अंतः समीक्षा

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

समीक्षा का अर्थ है– अपने गुण दोषों का विचार करके, अन्तः समीक्षा करके सुधार करना। अन्तः समीक्षा से अन्तःकरण शुद्ध होता है। मानव गलती तब करता हैं जब उसको गलती का ज्ञान नहीं होता। यदि क्या करणीय हैं क्या अकरणीय हैं इसका ज्ञान हो जाये तो सम्भवतः मनुष्य गलती न करें। इसके लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। हर वस्तु का प्रशिक्षण होता है। व्यक्ति जब बच्चा रहता हैं तो प्रत्येक चीज का उसको ज्ञान कराया जाता है और यह बताया जाता हैं कि उसे क्या करना हैं और क्या नहीं करना है। संस्कारों को बीज बपन बचपन में ही किया जाता है। समय–समय पर उसका अन्तः निरीक्षण भी होना चाहिए। विकास की जो धारा प्रारम्भ की गई हैं वह आगे बढ़ रही हैं या नहीं, उसमें क्या कमी है, उसको कैसे ठीक किया जाये, ये सब बाते अन्तः समीक्षा से ही ज्ञात होती है। चिन्तन–मनन और निदिध्यासन करने से धीरे–धीरे ज्ञान स्थायी हो जाता है। चिन्तन का अर्थ हैं किसी विषय पर मन लगाकर उसके गुण दोषों पर विचार करना। मानव जीवन में अनेक विषय होते हैं, जिनके बारे में उसकी अच्छाई और बुराई के बारे में विचार किया जाता है और अच्छाई को ग्रहण किया जाता है। यह कार्य चिन्तन का है। मनन के द्वारा मानसिक चिन्तन होता है। विद्यार्थी जब किसी पाठ का स्मरण करता हैं तो उस पर वह मनन करता है। मनन करने से पाठ दिमाग में स्थित हो जाता है। जब बार–बार यह क्रिया की जाती हैं तो वह निदिध्यासन कहलाने लगती है।

जीवन में सर्वत्र द्वैत का दर्शन होता है। द्वैत से अद्वैत की ओर जाने की प्रक्रिया पूर्णता की प्रक्रिया है। द्वैत साधन है और अद्वैत हमारा लक्ष्य संसार में सर्वत्र दो छोर है– जीवन और मरण, स्त्री और पुरुष, जड़ और चेतन, द्वैत और अद्वैत। जीवन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। जन्म के बाद व्यक्ति बड़ा होता है उसका एक लक्ष्य होता हैं और लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति प्रयास करता है। बार–बार के अभ्यास से लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है। यदि किसी कारण से असफलता मिल रही हैं तो मानव को अन्तः समीक्षा करनी चाहिए कि हमारे

अन्दर क्या कमी रह गयी, जिससे हम अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पा रहे है। इस सम्बन्ध में चीटी का उदाहरण द्रष्टव्य है। एक चींटी एक तिनका लेकर दीवाल पर चढ़ने का प्रयास कर रही थी। बार–बार वह दीवाल से नीचे गिर जाती थी, लेकिन उसने हार नहीं मानी और लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रयास करती रही और वह समय आ गया जब वह दीवाल पर चढ़ गयी। मानव को भी इसी प्रकार बार–बार प्रयास करना चाहिए, जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाये। लक्ष्य सदैव ऊंचा बनाना चाहिए। ऊंचा लक्ष्य व्यक्ति को ऊंचा उठाता है। मानव नीचले स्तर से उच्च्च स्तर तक परिश्रम और परिमार्जन के द्वारा ही पहुंचता है। विद्यार्थी अवस्था में सभी सामान्य ही होते है, लेकिन उन्हीं में से कुछ विद्यार्थी ऐसे होते हैं जो परिश्रम करके अपने को उच्च्च पद पर प्रतिष्ठित कर लेते है। उनका प्रयास ही उन्हें ऊंचे पद पर आसीन कराता है। उच्च्च पद प्राप्त करने के पहले सभी एक सामान्य नागरिक ही रहते है। पुरुषार्थ करके उच्च्च पद प्राप्त किया जा सकता है। अपनी कमियों को खोज करके उसे दूर करने का संकल्प करना चाहिए। इसके लिए अन्तः समीक्षा की आवश्यकता होती है। अन्तः समीक्षा से मानव अपना मूल्यांकन स्वयं करता है। दूसरों का मूल्यांकन करने की अपेक्षा स्वयं अन्तः निरीक्षण करना चाहिए और देखना चाहिए कि हमारे अन्दर क्या कमी रह गयी। गीता में भी कहा गया है कि बार–बार अभ्यास करना चाहिए, फल की इच्छा नहीं करनी चाहिए। फल ईश्वर के अधीन होता है। जिस वस्तु पर अपना अधिकार नहीं हैं उसके बारे में ज्यादा चिंतन करके व्यथित नहीं होना चाहिए।

भारत के प्राचीन ऋषियों और मुनियों ने आत्म ज्ञान के लिए सबसे अच्छा मार्ग अन्तःसमीक्षा को ही बतलाया हैं। अन्तःसमीक्षा से मानव को अपनी कमियों का पता चलता हैं, जिससे आगे बढ़ने का मार्ग भी प्रशस्थ होता है। अन्तः समीक्षा में जीवन के उन्नयन का मार्ग है। अन्तः समीक्षा के दौरान आत्मज्ञान होता है। आत्मा के ऊपर लगे हुये कर्मावरण का क्षय होता है। भगवान महावीर, भगवान बुद्ध, भगवान शंकराचार्य और अन्य भारतीय महापुरुषों ने अन्तः समीक्षा को ही मोक्ष का मार्ग बताया है। भगवान महावीर ने अन्तः समीक्षा करके यह दर्शन दिया की बाह्य जगत में सुख को खोजना व्यर्थ है। सबसे बड़ा सुख मनुष्य के अन्दर ही समाहित है। जो उस सुख को जान जाता है उसके लिए बाहर का सुख फीका प्रतीत होने

लगता है। भगवान बुद्ध ने भी अन्तः समीक्षा करके यह ज्ञान प्राप्त कर लिया कि यह संसार दुःखमय है। उन्होंने चार आर्य सत्यों का उपदेश दिया। अष्टांगिक मार्ग का उपदेश दिया। जिस पर चलकर मानव इस दुःखमय संसार से मुक्त हो सकता है। भगवान् श्रीमदाद्य शंकराचार्य ने अद्वैत का दर्शन दिया। उनके अनुसार जहां द्वैत दिखलायी देता हैं, वहां भ्रम की स्थिति बनी रहती है। सत्य तो अद्वैत ही है। ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या का दर्शन देकर शंकराचार्य ने एकमात्र ब्रह्म को ही सत्य माना। दृश्यमान जगत् की प्रतीति वैसी ही हैं जैसे रज्जु में सर्प की प्रतीति। रज्जु में सर्प की प्रतीति भ्रमवश होती है। समीक्षा में गुण–दोष का आलोचन करके गुणों का विकास किया जाता है।